

# मैनावती

— नरेन्द्र कोहली

महीना सावन का था और ऋतु वर्षा की थी ; किंतु कल रात से मेघों ने वर्षा नहीं केवल गर्जना की थी । उमस फिर से बढ़ गई थी । वाष्प की ऊष्मा, ग्रीष्म से भी अधिक तपाने लगी थी । वाष्प और वाष्प से छन कर आती धूप के कारण दिन भर किसी के लिए भी बाहर निकलना कठिन था । सूर्य ढला तो कुछ राहत हुई । दिन भर भीतर बंद रहने के कारण इस समय बाहर निकल कर खुली हवा में बैठने की तैयारी हुई ।

राजा एक लंबी अनुपस्थिति के बाद खेतड़ी लौटे थे । उनके संबंधियों, अधिकारियों और कर्मचारियों को उनसे भेंट करनी थी । ऐसा कौन था, जो उन्हें प्रणाम करने और उनका कुशल समाचार जानने नहीं आएगा । गवाक्ष दर्शन की परंपरा अब समाप्त हो गई थी ; किंतु प्रजा, राजा के दर्शन तो करेगी ही । समारोह तो होना ही था ।

“ स्वामी जी कहां हैं ? ” उन्होंने पूछा ।

“ कदाचित् अपने कक्ष में होंगे । ” दीवान ने कहा ।

“ किसी को भेजिए दीवान जी ! जाकर देखे कि यदि वे ध्यान न कर रहे हों तो उनसे हमारा संदेश कहे कि बाहर प्रकृति बहुत मनोहर हो गई है । वे भी आएँ और थोड़ी देर हमें अपने संगति का आनन्द दें । ”

आदेश पाकर सेवक स्वामी के कक्ष की ओर दौड़ गया ।

स्वामी जी को सेवक सादर लिवा लाया था ।

“ प्रकृति का आनन्द ले रहे हैं राजन् ! ” स्वामी जी ने मुसकरा कर कहा ।

“ हम जैसे जो अपने भीतर आनन्द पाने में असफल रहते हैं, वे बाहर प्रकृति में आनन्द खोजने का प्रयत्न करते हैं महाराज ! ” अजितसिंह बोले ।

स्वामी जी ने राजा पर एक गहरी दृष्टि डाली, “ धन्य हैं, वे लोग, जो भीतरी आनन्द के अभाव में व्याकुलता का अनुभव करते हैं और उसे पाने के लिए पागल हो जाते हैं । वे ही लोग अपने लक्ष्य पर पहुंचेंगे । जो माया में लिप्त रहता है और आत्मिक आनन्द के प्रति सजग नहीं है, वह न उसकी ओर बढ़ता है और न ही उसे प्राप्त करता है । राजन् ! आपकी व्याकुलता ही आपको अपने गंतव्य की ओर ले जाएगी । व्याकुलता, सफलता की पहली सीढ़ी है । ”

स्वामी जी ने अपनी आंखें बंद कीं और ‘शिव शिव’ का उच्चारण किया । तभी कुछ हलचल हुई । स्वामी ने आंखें खोलीं, सामने से नर्तकियों का एक दल चला आ रहा था ।

स्वामी ने अजितसिंह की ओर देखा, जैसे पूछ रहे हों, ‘ अध्यात्मचर्चा के मध्य यह माया की शोभायात्रा कहां से आ गई ? क्या इसके लिए ही उन्हें यहां बुलाया गया था ? ’

“ स्वामी जी ! ” मुंशी जगमोहनलाल बोले, “ ये नर्तकियां ‘सलाम मालूम’ करने के लिए उपस्थित हुई हैं । महाराज इतने दिनों के बाद लौटे हैं तो यह इनका भी राजकीय कर्तव्य है कि राजा के दर्शन करें । ”

“ ‘सलाम मालूम’ ? वह क्या है ? ”

“ राज्य के आश्रितों, सेवकों और किसी पद के प्रत्याशियों के लिए प्रातः एवं सायंकाल राजा जी की सेवा में अभिवादन करने के निमित्त उपस्थित होने का नियम है । इस अभिवादन का नाम ही ‘सलाम मालूम करना’ है । इससे महाराज को यह सूचना रहती है कि कौन उनकी सेवा में है और कौन उनकी सेवा में आने का इच्छुक है । किसको अभी आजीविका की आवश्यकता है ? यह उनके आश्रितों की हाजरी भी है और आजीविका के प्रत्याशियों द्वारा महाराज को अपनी आवश्यकता का स्मरण कराना भी । ”

“ यह दल अभिवादन कर चला जाएगा ? ”

“ यदि राजा किसी को कोई आदेश न दें तो न बरसने वाले मेघों के समान ये लोग लौट जाएंगे । ”

स्वामी कुछ आश्चर्य दिखे ।

नर्तकियों ने राजा का सामूहिक अभिवादन किया । ...और तब उन में से मैनाबाई आगे बढ़ आईं । वह उनकी अगुवा नहीं लगती थी । ... उसने हाथ जोड़कर अत्यंत विनीत भाव से प्रणाम किया । सिर झुकाए हुए ही मधुर स्वर में बोली, “ महाराज की कृपापूर्ण अनुमति मिले तो मैं एक भजन सुनाना चाहती हूँ । ”

स्वामी ने देखा : गायन की इच्छुक महिला में यौवन सुलभ चांचल्य नहीं था । न वह गणिकाओं के समान हेला का सहारा ले रही थी । वह प्रौढ़ और गंभीर दिखाई दे रही थी । राजा ने उसे गाने का आदेश नहीं दिया था । वह स्वयं ही गाने का प्रस्ताव कर रही थी । वह राजा और अन्य उपस्थित लोगों को अपने रूप से नहीं रिझा सकती थी, अतः अपने संगीत से उन्हें लुभाना चाहती थी ? ...

स्वामी ने राजा की ओर देखा ।

अजितसिंह स्वाभाविक रूप से मुसकरा रहे थे। उनके चेहरे पर अपरिचय का भाव नहीं था। वे शायद उस महिला को भली प्रकार पहचानते थे।

“अवश्य गाओ मैनाबाई!” उन्होंने कहा, “तुम्हारे मधुर कंठ का संगीत सुने काफी समय हो गया है।”

मैनाबाई बैठ गई, जैसे वह सलाम मालूम करने नहीं, गाने की पूरी तैयारी कर के आई थी। वाद्य यंत्र प्रस्तुत कर दिए गए। संगत करने वाले भी साथ आ बैठे। गाना आरंभ होने को ही था। ...

स्वामी के मन में वितृष्णा जागी। वे संगीत के विरोधी नहीं थे; किंतु वे राजा और दरबारियों की संगति में एक वेश्या का मुजरा सुनने यहां नहीं आए थे।

स्वामी अपने स्थान पर लौट जाने के लिए उठ खड़े हुए।

मैनाबाई ने उनका उठना तत्काल लक्षित किया, जैसे वह पहले से ही उसके लिए आशंकित हो। उसने हाथ जोड़ कर निवेदन किया, “स्वामी जी! आप अवश्य विराजिए।”

स्वामी उसका तिरस्कार नहीं करना चाहते थे। वे असमंजस में खड़े के खड़े रह गए।

“महाराज! मैं जानती हूँ कि गणिकाओं के मुजरे में संन्यासी नहीं बैठा करते।” उसने अपने जुड़े हाथों पर अपना माथा टेक दिया, “किंतु आपके बैठने से यह राजसभा मंदिर की मर्यादा पा जाएगी।” उसने स्वामी की ओर देखा, “आज मैं महाराज के लिए नहीं गा रही। ...”

मुंशी जगमोहनलाल कुछ तन गए: यह मूर्ख गणिका खेतड़ीनरेश का अपमान कर रही थी। राजा का अन्न खाती है और राजा के सामने बैठ कर कह रही है कि वह राजा के लिए नहीं गा रही। ...

“मैं भगवान के लिए भी नहीं गाना चाहती। उनके लिए मैं अपने एकांत में गाती हूँ।” मैनाबाई ने निःशंक भाव से कहा, “आज मैं आपको ही एक भजन सुनाना चाहती हूँ। इस पतिता की यह प्रार्थना सुन लीजिए।” उसका स्वर कातर हो उठा था, “दीनबंधो! आप तारनहार हैं। आपका स्नेह राजा तक ही क्यों सीमित रहे, प्रजा पर भी उसकी वर्षा होनी चाहिए। इस पापिष्ठा को निराश मत कीजिए।”

उसकी कातरता स्वामी जी के मन को छू गई।

स्वामी की दृष्टि राजा की ओर मुड़ी। राजा ने गणिका के आग्रह में अपनी अवहेलना नहीं मानी थी। उन्होंने अपनी ओर से भी अनुरोध किया, “स्वामी जी! मैनाबाई का गायन सुनकर सभी प्रसन्न होते हैं। आप भी दया कर इसे सुन लीजिए। यह मुझ पर भी आपकी कृपा होगी। यह सांसारिक गीत नहीं सुनाएगी, कोई श्रेष्ठ भजन ही गाएगी।”

स्वामी मन ही मन हंसे। वे राजा को जिस रोग से मुक्त करना चाहते हैं, राजा उसीके कीटाणु तश्तरी में रख कर उन्हें परोस रहे थे। ... अजितसिंह जानते हैं कि स्वामी संगीत के प्रेमी हैं। किंतु उनका संगीत वह पवित्र संगीत है, जो मनुष्य के मनको एकाग्र कर ईश्वर के निकट ले जाता है। वह समाधि तक पहुंचने का एक माध्यम है, भक्ति का ही एक मार्ग है। ... और अजितसिंह उन्हें एक वेश्या के संगीत और मुजरे के दर्शक होने का आग्रह कर रहे हैं। पता नहीं वह स्त्री वेश्या है या नहीं। वह मात्र नर्तकी भी हो सकती है। केवल गायिका तो वह नहीं है। वह कलावती तो है ... और फिर राजाओं की सभा में गाने वाली गायिका किस क्षण कलाकार से वेश्या हो जाएगी, इसका किसी को क्या पता है। धन की तृष्णा ने प्रायः कला को वेश्या बनाया है। ... राजा अजितसिंह कुछ भी अशोभनीय न करें, तो भी क्या। उनके किसी मुसाहिब को भा गई तो वह हाथ पकड़ उसे अपने साथ ले जाएगा और सीधे अपनी शैया पर पहुंचा देगा। ...

पर स्वामी के सात्विक मन में यह प्रतिक्रिया टिकी नहीं। ... उस स्त्री का भाग्य उसके प्रति कठोर रहा है ... उन्होंने सोचा ... उसको उसके कर्मों के लिए दंडित करने का काम ईश्वर का है, स्वामी का नहीं। स्वामी के मन में पापियों के लिए भी दया का भाव होना चाहिए। यदि कोई अपने पापों से ऊपर उठने के लिए सहारा मांगे तो स्वामी का धर्म है कि वे उसे सहारा दें ...

स्वामी का उठकर जाना स्थगित हो गया। वे ठहर गए। गायिका की कातर प्रार्थना में उन्हें कुछ सात्विकता का आभास हुआ था। राजा के अनुरोध का भी कोई विशेष अर्थ होना चाहिए। राजा स्वामी को किसी गणिका का बाजारू गीत सुनवाने के लिए इस प्रकार का आग्रह नहीं करेंगे। ...

वे बैठ तो गए; किंतु उनकी अन्यमनस्कता किसी से छिपी हुई नहीं थी। लग रहा था कि वे इस परिवेश से तटस्थ होकर अपने भीतर रमने का प्रयत्न कर रहे थे। वे ध्यान करने का प्रयत्न कर रहे थे।

मैनाबाई ने ताल और सुर के साथ सूरदास का पद आरंभ किया:

“हमरे प्रभु औगुन चित्त न धरो!”

स्वामी सजग हो उठे। वह पापिनी तो पहले ही अपने अवगुणों को स्वीकार कर रही है। पश्चात्ताप कर रही है। यह किसी गणिका द्वारा महफिल को रिझाने का प्रयत्न नहीं, एक भक्त का भगवान् के सम्मुख आत्मनिवेदन था। ...

“समदर्सी है नाम तिहारो, अब मोहि पार करो।

इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो।

सो दुविधा पारस नहीं जानत, कंचन करत खरो।”

स्वामी देख रहे थे, वह संगीत में पारंगत थी। उसका कंठ भी मधुर था; किंतु सबसे महत्वपूर्ण तो उसके शब्द थे, जो उसके हृदय की स्थिति प्रकट कर रहे थे। वे केवल गायिका के शब्द न होकर एक समर्पित भक्त की वाणी थी, जिसे अपने दोषों का पूर्ण ज्ञान था। वह उन्हें स्वीकार कर रही थी और प्रभु से विनती कर रही थी। ... वह उन शब्दों का उच्चारण भर नहीं कर रही थी, उन शब्दों को जी रही थी। ...

“ इक नदिया इक नार कहावत, मैलो हि नीर भरो,  
जब दोऊ मिलि इक बरन भए, सुरसरि नाम परो।  
यह माया भ्रमजाल निवारो, सूरदास सगरो,  
अबकी बेर मोहि पार उतारो, नहिं प्रन जात टरो।।”

गायिका अपने संगीत में ही नहीं, अपने भावों में भी तन्मय थी। वह राजा के दरबार में नहीं बैठी थी, अपने आराध्य की सेवा में उपस्थित थी। सुनने वाले भी चित्रवत् हो गए थे। सभा पर एक विलक्षण विद्युत सी दौड़ गई थी। भक्त हृदय के निवेदन का भाव स्वामी को भी छू गया। ... वे इस स्त्रीको गणिका मानकर उसके संगीत की उपेक्षा कर यहां से उठकर जा रहे थे ... वह सचमुच उन्हीं के माध्यम से भगवान् से निवेदन कर रही थी ...

स्वामी का मन जैसे चौंक उठा ... यह भजन कहीं स्वामी द्वारा किए गए उसके तिरस्कार का उत्तर तो नहीं? ... वह तो स्वामी के सम्मुख ही अपना हृदय उंडेल रही है। ... ऐसा न भी कर रही हो, तो भी स्वामी के लिए उसका निवेदन विचारणीय है ...

वे तो वेदांती हैं .... अद्वैत वेदांत के अनुयायी। विश्वास करते हैं कि संसार में जो कुछ भी है, वह ईश्वर का ही प्रतिरूप है। ईश्वर के सिवाय यहां और कुछ है ही नहीं। वेदांती प्रत्येक जीव में स्वयं को और स्वयं में प्रत्येक जीव को देखता है। तो फिर वे इस गणिका में स्वयं को क्यों नहीं देख पाए? गणिका के भीतर जो आत्मा है, वह भी तो परमात्मा का ही अंश है। वे स्वयं यह शरीर नहीं हैं, उनका वास्तविक स्वरूप यह नहीं है। वे आत्मा हैं, शुद्ध आत्मा – परमात्मा का अंश। तो यह गायिका भी तो वही है। स्वामी यदि यह शरीर नहीं हैं, तो वह गायिका कैसे शरीर मात्र हो सकती है। वह भी तो आत्मा ही है। शुद्ध बुद्ध आत्मा। परमात्मा का अंश। कलेवर ही तो भिन्न है। ... और वे उसे स्त्री मानकर उससे दूर हट रहे थे, क्योंकि संन्यासी ब्रह्मचारी होता है और ब्रह्मचारी को स्त्री के संपर्क में नहीं आना चाहिए। ... वे उसे गणिका मानकर उसकी उपेक्षा कर रहे थे। पर वह गणिका नहीं है, वह तो उनकी गुरु है, जो उन्हें उपदेश दे रही है। ... यदि वे पारस हैं तो उन्हें लोहे और लोहे में अंतर नहीं करना है, चाहे वह पूजा में रखा गया हो, चाहे किसी बधिक के घर में धरा हो, जहां उससे जीवों के शरीर काटने का काम लिया जा रहा हो। गंगा के पवित्र जल और नाले के गंदे पानी में क्या अंतर है, यही तो कि उस नाले का पानी मैला हो गया है। पर जब वह गंगा में मिल जाता है, तो वह भी गंगा का ही अंश हो जाता है। गंगा हो जाता है। जीव ब्रह्म में मिल जाता है, तो वह भी ब्रह्म हो जाता है। वरन् वह ब्रह्म ही है। जीव होने का तो भ्रम मात्र है। माया का चमत्कार है। ... तो फिर यह गायिका...

ठीक कह रही है वह, ' मेरे औगुन प्रभुजी चित्त न धरो ... समदर्शी है नाम तिहारो .... '

स्वामी के मन में अहंकार कहां से आ गया? वे स्वयं को उस गायिका से पृथक् और श्रेष्ठ कैसे मानने लगे? ... वे अपने भीतर न देख कर, बाहर, दूसरों के अवगुण देखने लगे। ... आत्मा तो निर्लिङ्ग होती है। आत्मा न स्त्री है, न पुरुष। उसका कोई शरीर नहीं है। शरीर तो प्रकृति द्वारा फैलाया गया मायाजाल है। वे शरीर के प्रति इतने सचेत कैसे हो गए। बाहरी आवरण का भेद उन्हें किसी की आत्मा से पृथक् कैसे कर सकता है। ... ठीक कह रही है गायिका ... समदर्शी है नाम तिहारो ...

स्वामी को लगा, उनसे कोई अपराध हो गया है। अहंकार ने उनपर पूर्ण प्रभुत्व जमा लिया था, जिससे उनके मन में द्वैत भाव आ गया था। गायिका ने न्याय के लिए गुहार की है। उसे न्याय मिलना ही चाहिए। स्वामी को प्रायश्चित्त करना होगा। ...

‘इस पतिता समझी जाने वाली स्त्री ने एक भक्त का पद गाकर, सर्व खल्विदम् ब्रह्म – के तत्व को हृदयंगम करा दिया है।’ वे सोच रहे थे, ‘मेरा संन्यास भी क्या संन्यास है? ... मैं संन्यासी हूँ और यह एक पतिता नारी है ... यह ऊंच- नीच की भावना... यह भेदबुद्धि आज भी दूर नहीं हुई? भगवद्गीता में भगवान् ने कहा है – समदर्शी वह है, जो एक विद्वान ब्राह्मण, एक चांडाल, एक हाथी और एक कुत्ते में भी अंतर न करे। और यहां वे एक भक्त हृदय को स्वयं से नीच समझ रहे हैं, क्योंकि वह एक राजसभा में गायन कर्म कर अपनी आजीविका पाती है। ... संगीत की प्रतिभा भी तो उसे भगवान् ने ही दी होगी। यह मधुर कंठ भी तो उसे प्रभु की कृपा से ही मिला है। वरन् भगवान् ही मधुर स्वर के रूप में प्रकट होते हैं। उसके संगीत का गुणग्राहक एक राजा निकला और वह उसके दरबार में गाती है, तो स्वामी ने उसे गणिका कैसे मान लिया? ... शिव! शिव!! ... सब प्राणियों में ब्रह्मानुभूति बड़ा ही कठिन कार्य है। ... चांडाल की बातें सुनकर शंकराचार्य के मन से भेदबुद्धि तिरोहित हो गई थी। ... स्वामी के मन से वही भेदबुद्धि दूर करने के लिए भगवान् को इस रूप में आना पड़ा है? भगवान् ने ही गायिका के माध्यम से उन्हें यह भजन सुनाया है? यह गायिका तो उनके जीवन में उनकी गुरु बन कर आई है? ...

स्वामी अपने स्थान से उठकर उसके पास आए, “ माता! मैंने अपराध किया है, क्षमा करो। मैं तुम्हें घृणा की दृष्टि से देख कर यहां से उठ जाना चाहता था; किंतु तुम्हारा ज्ञानगर्भित भजन सुनकर मेरी आंखें खुल गई हैं। तुम मेरी ज्ञानदायिनी माता हो।”

गायिका ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से स्वामी की ओर देखा। उसके अधरों पर मुस्कान थी। उसके चेहरे पर तृप्ति के भाव थे। ... किंतु उसके कंठ से वाणी नहीं फूटी। भावातिरेक ने उसके कंठ को अवरुद्ध कर दिया था। बोलती तो कदाचित् उसके अश्रु उसके कपोलों तक बह आते ...

“आज मैं समझ पाया हूँ माता ! कि नारी, पुरुष तो शरीर के आकार का नाम है। हम यह शरीर नहीं हैं।” स्वामी बोले, “ आत्मा निर्लिङ्ग होती है। वेदांत की दृष्टि में यह भेद कोई भेद नहीं है। यह विभाजन कोई विभाजन नहीं है। जो इस विभाजन को मानता है, वह आत्मा को नहीं शरीर को देखता है।... मैंने तुम्हारे प्रति जो अपराध किया है, उसके लिए मुझे क्षमा करो...।”

मैनाबाई ने पल्लू से अपना मुंह ढंक कर सिसकी को वहीं रोक लिया और अपने दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक झुका दिया। ( 12. 7. 2002 )